RESEARCH PAPER

RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
e-ISSN: 2455-3085 | Vol.07 | No.02 | February 2022 | pp. 92-97
Double-Blind Peer Reviewed/Refereed Journal

Relevance of Saint DaduDayal in current political field

संत दादूदयाल की वर्तमान राजनीतिक क्षेत्र में प्रासंगिकता

*Sunil Kumar Chhipa

Research Scholar, Department of Hindi, University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

Abstract

With the defeat of Prithviraj Chauhan in the Second Battle of Tarain in 1192 AD, the establishment of Islamic power in India and the end of Hindu rule occur simultaneously. It was the final end of the process of complete disconnection from the secular basis of Hindushahi in central politics, not merely the defeat of one empire by another. It is a general political principle that any king or ruler becomes popular only by his public welfare works and gets the collective loyalty and participation of the class ruled by him. On the contrary, when the ruling class starts governing with the help of oppressive military power only, starts doing anti-people work, then it becomes the shelter of the public's distaste, hatred, alienation and feeling of alienation. The history of India is full of such examples that the rulers who followed their real religion and treated all the people as equal and worked for their welfare, they became very popular among the people, whereas the rulers who were fanatics and forcefully changed their religion to the people. When compelled to accept or carried out other similar anti-religious, anti-social actions, then both common people and saints stood up as their retaliation.

Keywords: *Political conditions, communal harmony, secularism, democratic governance*

Abstract in Hindi

1192 ई॰ में तराईन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की पराजय के साथ ही भारतवर्ष में इस्लामी सत्ता की स्थापना और हिन्दू शासन का अंत एक साथ घटित होता है। यह एक साम्राज्य द्वारा दूसरे साम्राज्य की पराजय मात्र न होकर केंद्रीय राजनीति में हिन्दूशाही के लौकिक आधार से पूरी तरह कट जाने की प्रक्रिया का अन्तिम छोर था। यह एक सामान्य राजनीतिक सिद्धान्त है कि कोई भी राजा या शासक अपने जन–कल्याणकारी कार्यों से ही लोकप्रिय बनता है और अपने द्वारा शासित वर्ग की सामूहिक वफादारी और सहभागिता प्राप्त करता है। इसके विपरित जब शासक वर्ग केवल दमनकारी सैनिक शक्ति की सहायता से शासन संचालित करने लगता है, प्रजा विरोधी कार्य करने लगता है तब वह जनता की अरूचि, वितृष्णा, परायेपन और विलगाव की भावना का आश्रय बनता है। भारतवर्ष के इतिहास में ऐसे उदाहरण भरे पड़े है कि जिन शासकों ने अपने वास्तविक धर्म का पालन कर समस्त जनता को एकसमान मानकर उसके हित–साधन के कार्य किये, वे जनता के बीच अत्यधिक लोकप्रिय हुए वहीं जिन शासकों ने धर्मान्ध होकर बलपूर्वक जनता को अपना धर्म ग्रहण करने पर बाध्य किया या अन्य इसी प्रकार के धर्म विरोधी, समाज विरोधी कार्यों को अंजाम दिया तब सामान्य जन और संत मत दोनों उनके प्रतिकार स्वरूप उठ खड़े हुए।

Keywords: *राजनीतिक परिस्थितियाँ, साम्प्रदायिक सद्भाव, धर्मनिरपेक्षता, लोकतांत्रिक शासन।*

Article Publication

Published Online: 20-Feb-2022

***Author's Correspondence**

Sunil Kumar Chhipa

Research Scholar, Department of Hindi, University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)

suneelkumarchhipa07@gmail.com

10.31305/rrijm.2022.v07.i02.015

© 2022 The Authors. Published by RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary. This is an open access article under the CC BY-NC-ND license (https://creativecommons.org/licenses/by-nc-nd/4.0/)

समाज वैज्ञानिक खोजों के आधार पर जे॰पी॰ स्कॉट का भी यही मत है कि "जो सामाजिक संस्था या व्यवस्था अपने घटकों के मूलभूत, नैसर्गिक तथा प्रवृत्तिजन्य अधिकारों को दबाने, नियन्त्रित करने या निषिद्ध करने का प्रयास करती है, वह या तो स्वयं मर जाती है या फिर समाज के घटकों को विकृत और अवांछित व्यवहार–प्रक्रिया को जन्म देती है"।[1] मध्ययुग की राजनीतिक परिस्थितियाँ अच्छी नहीं कही जा सकती। तत्कालीन मुस्लिम शासक सम्पूर्ण भारतवर्ष में इस्लाम को स्थापित करना चाहते थे लेकिन सनातन धर्म की पालना करने वाले हिंदू इस्लाम ग्रहण करने को तैयार न थे। दादू अकबर के समकालीन थे। अकबर के पूर्व और बाद के अधिकांश शासक धर्मान्ध और कट्टर थे। स्वयं अकबर भी अपने शासन के प्रारंभ में कट्टर ही रहा। ऐसा माना जाता है कि उसने चितौड़ विजय (1567 ई॰) के पश्चात् अनेकों राजपूतों की नृशंस हत्या करवा

कर उनके सिरों की एक बड़ी मीनार बनवा दी थी और इस घटना से सम्पूर्ण भारतवर्ष में अपने आतंक का साम्राज्य स्थापित किया था। "अपने शासन के अंत के आस–पास अकबर ने 1594 ई॰ में घटिया व अपमानजनक 'जजिया कर' व 1596 ई॰ में 'तीर्थयात्रा कर' अवश्य हटा लिया था।"[2]

अकबर के बाद उसका पुत्र जहाँगीर भारत का सम्राट बना। उसके आदेश पर 30 मई, 1606 ई॰ को श्री गुरू अर्जुनदेव को लाहौर में भीषण गर्मी के दौरान "यासा व सियासत" कानून के तहत् लोहे के गर्म तवे पर बिठाकर शहीद कर दिया गया तो मुगल बादशाह औरंगजेब ने 11 नव॰ 1675 ई॰ में 9 वें सिख धर्मगुरू श्री गुरू तेगबहादुर की हत्या इस्लाम न स्वीकारने के कारण करवा दी। इसी संदर्भ में तत्कालीन राज–व्यवस्था की पोल खोलते हुए सिक्ख गुरवाणी सम्बन्धी अपनी सुरक्षात्मक टिप्पणी में प्यारासिंह 'पद्म' कहते हैं–"मालूम होता है, उन्होंने (गुरू तेगबहादुर ने) अपने समय की दशा को अच्छी तरह जाँच लिया था, जिसमें गरीब जनता बुरी तरह पिस रही थी, मजहब के नाम पर उस समय की सरकार जो कुछ कर रही थी, वह अति भयंकर रूप धारण किए हुए था और विचारों की स्वतंत्रता नाममात्र भी नहीं थी। एक भयभीत था। एक भयानक; एक मजलूम था, एक जालिम। इसमें से आत्मनिर्भर होने की शिक्षा देते हुए गुरू ने कहा कि निपुण पुरूष वहीं है जो दोनों अवस्थाओं से ऊपर उठकर स्वमानपूर्ण जीवन व्यतीत करे।"[3] ये जबरन धर्मान्तरण के वे प्रयास थे जो समाज के प्रसिद्ध वर्ग से संबंधित थे, आम जन के विरूद्ध किये गये प्रयासों को इतिहास में उतना स्थान ही न मिला क्योंकि इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति का ही ब्यौरा होता है आम–जन का नहीं और इतिहास लेखन में शासन सत्ता का हस्तक्षेप भी सदा से होता आया है तब केन्द्र में आसीन मुस्लिम शासन अपने ही विरूद्ध किसी इतिहास सामग्री को अस्तित्व में आने देता, यह उस निरंकुश राजतंत्र में असंभव ही प्रतीत होता है। आज की परिस्थिति भी इससे पृथक नहीं है। आज भी भारत में धर्मांतरण का खेल जोर–शोर से चल रहा है बल्कि आज यह अधिक व्यापक हो गया है। अब धर्मांतरण केवल मुस्लिमों द्वारा ही नहीं कराया जा रहा बल्कि ईसाई मिशनरियां भी बहुत बड़े पैमाने पर यह कार्य कर रही है। अब धर्मांतरण जबरन न करवाकर मजबूरी में मदद के माध्यम से उसकी एवज में कराया जा रहा है।

ईसाई मिशनरियों का पहला लक्ष्य समाज के वे दबे–कुचले और आदिवासी लोग होते हैं, जिन्हें दो वक्त का खाना तक नसीब नहीं होता है। वे ऐसे लोगों को सिर्फ एक बोरी चावल, कुछ रूपये और उनकी रोगादि में मदद के द्वारा उन्हें अपने धर्म में धर्मांतरित करवा लेते हैं। वे भारतीय संविधान के भाग 9 के अनुच्छेद 25 के अंतर्गत प्रदत्त 'धर्म प्रचार के अधिकार' का गलत लाभ उठाते हैं। पहले ये दक्षिण भारत तक सीमित थे अब झारखंड, छत्तीसगढ़, उत्तर पूर्व के राज्यों और पंजाब में भी अधिक सक्रिय है। धर्म परिवर्तन कराने के लिए पैसे का इस्तेमाल तो आजादी से पहले भी होता था लेकिन आजादी के बाद बहुत तरह के नये प्रयोग इन लोगों को करने पड़े। मिशनरियों ने अपने अनुभव से पाया कि सनातन धर्म के लोग अपनी धार्मिक, सांस्कृतिक मान्यताओं से भावनात्मक रूप से इतने गहरे से जुड़े है कि तमाम प्रयासों के बावजूद भारत में मनचाही मात्रा में धर्म परिवर्तन संभव नहीं हो पा रहा है। "इस कठिनाई से पार पाने के लिए नए हथकंड़ों का प्रयोग शुरू किया गया है, जैसे मदर मैरी की गोद में ईसा मसीह की जगह गणेश या कृष्ण को चित्रांकित कर ईसाइयत का प्रचार शुरू किया गया, ताकि निरक्षर आदिवासियों को लगे कि वे हिंदू धर्म के ही किसी संप्रदाय में दीक्षित हो रहे हैं।

ईसाई मिशनरियां विदेशी फंडिग का इस्तेमाल करते हुए पिछले सात–आठ दशकों में छतीसगढ़, झारखंड आदि राज्यों के आदिवासी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर धर्मांतरण करा चुकी है। जहां इन गतिविधियों का फायदा नक्सली भी उठाते हैं। विदेशी पैसे का धर्मांतरण में इस्तेमाल देश की सुरक्षा और स्थिरता के लिए बड़ी चुनौतियों को जन्म दे रहा है।"[4] देश को बड़े नुकसान से बचाने के लिए विदेशी चंदे पर पूरी तरह रोक के साथ–साथ मिशनरी संगठनों की गतिविधियों पर सख्त पाबंदी आवश्यक है। इनकी धार्मिक सभाओं में दूसरे धर्मों के देवी–देवताओं और प्रतीकों का प्रयोग करने को छल की श्रेणी में रखा जाना चाहिए और धार्मिक नगरों और सामरिक रूप से महत्वपूर्ण ठिकानों के आसपास उन पर कड़ी निगाह रखी जानी चाहिए। अब हम फिर से बात करते हैं मुस्लिमों द्वारा हिन्दुओं के धर्मांतरण की। जैसा कि हम मुगलकाल के दौरान की चर्चा कर चुके हैं कि उस समय साम, दाम, दण्ड, भेद आदि किसी भी उपक्रम से अधिकांश मुस्लिम शासक भारत को मुस्लिम राष्ट्र बनाना चाहते थे लेकिन सनातन धर्मावलंबियों की अपने धर्म में अगाध श्रद्धा के सामने वे पस्त हुए। इस संबंध में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कथन बड़ा महत्त्वपूर्ण है। वे कहते हैं–"पैगम्बरी धर्म के अनुयायियों में आस्था–विश्वास, आचार–विचार और जीवन प्रणाली की कुछ ऐसी विशेषताएँ थी, जिनसे आपसी मेल–मिलाप में वह गति और व्रीवता नहीं आ सकी जो अन्यत्र लक्षित हुई थी। विजातीय तत्वों को पचा लेना सरल न था, फलस्वरूप दोनों पक्षों के बीच परस्पर संदेह, जुगुप्सा और पवित्रता–अपवित्रता जनित भेदभाव बलवान हो उठा।"[5] लेकिन मुस्लिमों द्वारा हिन्दुओं के धर्मांतरण का प्रयास आज भी किया जा रहा है और इस काम में उनकी मदद खाड़ी देश भी कर रहे हैं। ये लोग भी हिन्दू समाज के ऐसे लोगों को चिन्हित करते हैं जो आर्थिक, सामाजिक स्तर से बहुत अक्षम हैं, जिन्हें रोजगारादि की सक्त आवश्यकता है। वे पहले ऐसे लोगों की रोजगारादि में व कुछ आर्थिक मदद भी करते है तत्पश्चात् उस मदद की एवज में उन्हें अपने धर्म में उनकी सहमति से या

जबरन धर्मांतरित करवा लेते हैं। आजादी से पूर्व स्वामी दयानन्द सरस्वती ने धर्म–परिवर्तन कर चुके लोगों को पुनः हिंदू धर्म में प्रवेश कराने की प्रेरणा से 'शुद्धि आन्दोलन' चलाया था। इस आन्दोलन के तहत् लाखों मुसलमानों तथा ईसाईयों की शुद्धि कराकर सनातन धर्म में वापसी करायी गयी थी। 11 फर॰ 1923 ई॰ को स्वामी श्रद्धानंद ने 'भारतीय शुद्धि सभा' की स्थापना कर शुद्धि का कार्य पुनः आरंभ किया था। उन्होंने अनेक राजनीतिक, सामाजिक दबावों के बावजूद शुद्धि–कार्य जारी रखा लेकिन 1926 ई॰ में अब्दुल रशीद नामक एक धर्मांध व्यक्ति द्वारा उनकी गोली मारकर हत्या कर दी गयी परन्तु शुद्धि आन्दोलन उनकी मृत्यु के बाद भी जारी रहा। यह सब लगभग पिछले सौ वर्षों में घटित हुआ है लेकिन महात्मा दादूदयाल ने तो लगभग चार सौ वर्ष पूर्व ही जबरन धर्मातरण का विरोध प्रारंभ कर दिया था। वे धर्मांतरण को ईश्वरीय मामले में दखल मानते थे और कहते थे–

जे हम नहीं गुजराते, तुम को क्या भाई।
सीर नहीं कुछ बंदगी, कहु क्यों फरमाई।।[6]

दादूदयाल का मानना है कि यह किसी के अधिकार क्षेत्र में नहीं है कि वह अन्य को जबरदस्ती अपने विश्वासों के अनुरूप ढाल ले, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान। शासन या अन्य कोई भी व्यक्ति या संगठन ऐसा करता है तो वह न्याय विरूद्ध है, धर्म विरूद्ध है, समाज विरूद्ध है और अत्याचार है। दादू इस बलात् धर्म परिवर्तन को बुरा मानते है। उनकी यह सांस्कृतिक सहिष्णुता उन्हें आधुनिक बनाती है। वे कहते हैं–

कागद का माणस कीया, छत्रपति सिरिमौर।
राजपाट साधैं नहीं, दादू परहरि और।।[7]

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है लेकिन पाकिस्तान ने स्वयं को इस्लामिक राष्ट्र के रूप स्थापित किया इसीलिए मुसलमानेत्तर जनसंख्या इस्लामिक कानूनों के अनुसार स्वतः मुसलमानों की दया पर निर्भर हो गयी। पाकिस्तान में हिन्दू और सिख जनता पर अत्याचार आम बात है। वे लोग हिन्दुओं और सिखों के पवित्र धार्मिक स्थलों को तोड़ रहे हैं। अफगानिस्तान में भी पिछले तालिबानी शासन के दौरान गौतम बुद्ध की विशाल शिलांकित मूर्ति को बम–विस्फोट से उड़ा दिया गया। इसी तरह के कार्य मध्यकाल में भी मुस्लिम आक्रांताओं और शासकों द्वारा संपंन हुए। जिसके अन्तर्गत हिन्दुओं के पवित्र मन्दिरों को तोड़कर मस्जिदों का निर्माण हुआ जिनमें प्रमुख था–प्राचीन राम जन्म–भूमि मन्दिर को तोड़कर बाबरी मस्जिद का निर्माण। इस मस्जिद का निर्माण प्राचीन राममन्दिर को ध्वस्त कर उसी के अवशेषों पर प्रथम मुगल बादशाह बाबर के समय मीर बाकी द्वारा करवाया गया। मीर बाकी ने ही इसका नाम 'बाबरी मस्जिद' रखा था लेकिन लम्बी कानूनी लड़ाई के बाद इस विवादित स्थल पर पुनः राममंदिर निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ है। ऐसा माना जाता है कि मथुरा की शाही ईदगाह मस्जिद जिस जमीन के ऊपर बनाई गयी है, उसके नीचे ही श्रीकृष्ण जन्मभूमि है। ऐसा दावा किया जाता है कि मुगल बादशाह औरंगजेब ने वहाँ स्थित मंदिर को तोड़कर वहाँ मस्जिद बनवा दी थीं इसी तरह काशी के विश्वनाथ मंदिर और ज्ञानव्यापी मस्जिद को लेकर भी विवाद जारी है। इसके अलावा हिन्दू धर्म के बारह ज्योतिर्लिंगों में प्रथम ज्योतिर्लिंग के रूप में स्थापित सोमनाथ मंदिर (गुजरात) को भी विधर्मियों द्वारा करीब 17 बार नष्ट किया गया लेकिन धर्म प्रेमियों ने प्रत्येक बार इसका पुनर्निमाण करवाया। वर्तमान मंदिर का निर्माण भारत के प्रथम उप–प्रधानमंत्री व गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल द्वारा 1951 ई॰ मे कराया गया, जिसे तत्कालीन राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद ने 1955 ई॰ में देश को समर्पित किया। मध्यकाल में ऐसे सैकड़ो मन्दिरों को मुस्लिम आक्रांताओं और शासकों द्वारा नष्ट करवा दिया गया। पाकिस्तान जैसे असहिष्णु देशों में यह कार्य आज भी किया जा रहा है। इस तरह के कुकृत्य के विरोध में ही संत दादूदयाल ने कहा था–

दादू अरस खुदाय का, अजरावर का थांण।
दादू सो क्यों ढाहिए, साहिब का निसाण।।[8]

दादू ने राजसत्ता के सन्दर्भ में अपनी मध्यमार्गीय दृष्टि का ही अवलम्बन किया है। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से भले ही इसका कहीं विरोध न किया हो परन्तु इसके कलुषित रूप से उन्हें घृणा अवश्य है। उन्होंने कहीं भी सूफी संतों की भाँति अपने ग्रंथ में तत्कालीन सम्राट की प्रशंसा नहीं की है। उनकी रचनाओं में किसी भी राजकर्मचारी की प्रशंसा में एक भी साखी या पद नहीं मिलता है हालाँकि उनका विरोध उग्र या मुखर भी नहीं है। यह विरोध बड़े ही प्रछन्न रूप से किया गया है। इस बारे में डॉ. रामबक्ष का कहना है कि "दादू जिन्हें सम्बोधित करते हुए अपनी रचना करते हैं, वह श्रोता समुदाय राज–काज से जुड़ा हुआ नहीं था। इनका दैनिक जीवन दरबार से संबंधित नहीं था। दादू ने जब भी उपदेश दिया अपने श्रोताओं के अनुभव की सीमा का ध्यान रखा है और उसी के अनुरूप अप्रस्तुत विधानों का प्रयोग किया है। अनपढ़ श्रोताओं के समझ में आने वाले रूपकों, उपमाओं और प्रतीकों का प्रयोग दादू ने किया है। इन्हीं के द्वारा वे अपने परम तत्व की व्याख्या करते हैं। राज–काज से जुड़े हुए व्यक्ति न तो दादू के शिष्य थे और न ही दादू ने उनको सुधारने के लिए उपदेश दिए थे। राज–मद के पीछे भागने वालों के प्रति हल्की–सी व्यंग्यात्मक टिप्पणी उनकी रचनाओं में कहीं–कहीं मिलती हैं।"[9] शासक व सामन्तों के

लिए रचनाएँ आदिकाल और रीतिकाल के दरबारी कवियों ने लिखी थी लेकिन दादू एक संत है और उन्हें अच्छे से पता है कि दरबार, रूप, रंग, धन–दौलत ये सब स्थायी नहीं है, स्थायी है तो केवल परमात्मा। वे इन सब सब को नश्वर माया से अधिक कुछ नहीं समझते और सर्वजन को यही कहते हैं कि इन माया जनित स्थितियों के चक्कर में न फंसे। दादू दरबारियों के विलास पूर्ण जीवन के प्रति अपने अनुयायियों को सचेत करते हुए कहते हैं–"तुमको इन लोगों के जीवन का अनुकरण नहीं करना हैं। ऐसे लोगों के साथ उठना–बैठना भी हानिकारक है। जनता के आदर्श तो 'संत' पुरूष है और संतों से ही आम आदमी को सामाजिक सम्पर्क रखना चाहिए।"[10] दादू को घृणा है ऐसे लोगों से जो दूसरों की कमाई पर अवलम्बित है। इसी कारण वे शासक, दरबारीयों, धार्मिक पुरोहितों और मुल्लाओं का विरोध करते है। वे राजसत्ता या दरबार को उसके शोषणकारी और विलासमयी स्वरूप के कारण घृणा की दृष्टि से देखते हैं। उन्होंने अपने लिए एक मर्यादा निश्चित कर ली है और उसी की अनुपालना में कहते हैं–

साध न कोई पग भरे, कबहुँ राज दुवारि।
दादू उलटा आप में, बैठा ब्रह्म विचारि।।[11]

मध्यकालीन शासन व्यवस्था राजतंत्रात्मक और निरंकुश थी लेकिन आज देश में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली है तब भी आज भी मध्यकाल की ही भाँति साधु–संतों को धर्म विरोधी, समाज विरोधी कहकर प्रताड़ित किया जाता है और अनेकों बार राजनीतिक या धार्मिक कारणों से हत्या तक कर दी जाती है। इसी तरह की प्रताडनाएं कबीर, दादू आदि संतों ने सही और सिख धर्मगुरू श्री अर्जुनदेव और श्री तेगबहादुर को तो धर्म रक्षा निमित्त अपनी शहीदी तक देनी पड़ी। इसका ताजा उदाहरण महाराष्ट्र के पालघर में दो साधुओं की आदिवासियों द्वारा पिट–पिटकर की गयी हत्या को माना जा सकता है। महात्मा दादूदयाल के समय की राजनीतिक परिस्थितिया भी ऐसी ही थी तब उन्होंने कलियुग के बहाने तत्कालीन स्थिति को उजागर किया था और कहा था–

झूठा कलियुग कह्या न जाई, अमृत कौं विष कहै बनाई।। टेक।।
धन कूँ निधन निधन कूँ धन, नीति अनीति पुकारे।। 1।।
नृमल मैला मैला नृमल, **साध चोर करि मारै**।। 2।।[12]

सत्ता का अहंकार बड़ा खतरनाक और विनाशकारी होता है। एडोल्फ हिटलर, बेनिटो मुसोलिनी, जोसेफ स्टालिन, माओ–त्से–तुंग, मुहम्मद गद्दाफी, सद्दाम हुसैन, किम जोंग और न जाने ऐसे कितने तानाशाह हुये जिनके एक आदेश से पूरा संसार त्रस्त हो जाता था। वर्तमान में अनेकों आतंकवादी संगठन कार्यरत है जो आतंक के बल पर अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहते है। भारत में भी मध्यकालीन अधिकांश शासक धर्मान्धता के शिकार होकर अपना वास्तविक कर्तव्य भूल गये थे तब दादू ने उन्हें समझाया कि मृत्यु अटल सत्य है। इसका प्रसार राजा से लेकर रंक पर्यन्त सभी तक है अतः कर्मों के प्रति सभी को सावधान रहना चाहिए–

राव रंक सब मरहिंगे, जीवै नाँही कोइ।
दादू सोई जीवता, जे मरजीवा होइ।।[13]

मध्यकालीन शासक वर्ग ने अपनी सत्ता को स्थायी और अटल मान लिया था। दुनिया के अनेक देशों के शासक आज भी इसी तरह का आचरण करते मिल जायेंगे। पड़ौसी देश अफगानिस्तान में आज तालिबानी शासन के तहत इसी तरह का शासन कायम है। 1971 ई. से पूर्व पाकिस्तान अपने ही पूर्वी भाग यानि वर्तमान बांग्लादेश के साथ भेदभावपूर्ण और शोषणकारी व्यवहार करता था जिसे 1971 ई. के भारत–पाक युद्ध के माध्यम से तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री स्व॰ इन्दिरा गाँधी ने बांग्लादेश नामक नवीन राष्ट्र के निर्माण से समाप्त करवाया। पिछले वर्षों मे I.S.I.S. द्वारा ईराक और सीरिया पर इस संगठन के क्रुर शासन को भी इसी का उदाहरण मानना चाहिए। वर्तमान में उत्तरी कोरिया का शासक किम जोंग उन का शासन भी इसी श्रेणी में गिनने योग्य है। शायद ये लोग भूल गये है कि मानव–जीवन की श्वासें सीमित है और प्रत्येक कर्म का फल भी निश्चित है अतः प्रत्येक प्रकार वे अहंकार को
त्यागकर राजर्षि बनकर राजकार्य करना उत्तम होगा–

दादू आपा ग्रव गुमान तजि, मद मछर अहंकार।
गहे गरीबी बंदगी, सेवै सिरजनहार।।[14]

दादू के समय राजनीतिक हत्याएँ, अत्याचार आदि आम बात थे। तब अत्याचार करने वालों को दादू ने कहा कि कर्मचक्र शाश्वत सत्य है। आज अगर तुम अपने सामर्थ्य के कारण किसी को कष्ट दे रहे हो तो निश्चय ही ऐसा समय भी आयेगा जब तुम्हें उक्त व्यक्ति द्वारा दिये गये कष्टों को सहना होगा, यही कर्मों का चक्र है जो लौटकर जरूर आता है–

दादू भीतर दुंदरि भरि रहे, तिन कूं मारै नाहिं।
साहिब की अरवाहू कूं, ताकूं मारण जांहिं।।[15]

संतो का मार्ग 'धर्मनिरपेक्ष मार्ग' कहा जा सकता है क्योंकि इसमें किसी एक सम्प्रदाय को मान्यता न देकर मानवतावादी मध्य मार्ग अपनाया गया है। भारत में आज मुसलमानों के दोनों प्रमुख भेद शिया और सुन्नी तथा 72 फिरकें आराम से रह रहे हैं लेकिन दुनिया का अन्य कोई–भी देश ऐसा नहीं है जहाँ यह बात संभव हो। यहाँ तक कि दुनियाभर के जो 57 इस्लामिक देश है उनमें भी यह संभव नहीं है। उन देशों का बहुसंख्यक वर्ग अपने ही सम्प्रदाय को दबा कर रखता है क्यों कि वह उसके समान शिया–सुन्नी या 72 फिरकों में से एक नहीं हैं। ये एक दूसरों की मस्जिदों में बम विस्फोट जैसे घृणित कार्य तक करते हैं। आज अफगानिस्तान में तालिबानी शासन के तहत् पश्तुन जाति ही शासन को संभाले है और इस शासन में उनके मंत्रियों की संख्या लगभग 90 प्रतिशत से ज्यादा है। वहाँ के अन्य मुस्लिमों जैसे उज्बेकों, तुर्कों, हजाराओं आदि की वर्तमान शासन में हिस्सेदारी न के बराबर है। हाल ही में जब ईजराइल ने फिलिस्तीन पर हमला किया तब उसकी मदद किसी भी इस्लामिक देश ने नहीं की क्योंकि उस देश में इस्लामिक जनसंख्या शफी मुसलमानों की थी जो कि अन्य देशों के इस्लामिक फिरकों हनफी या हन्बली से भिन्न थी। आज अफगानिस्तान से हिन्दुओं और सिक्खों के साथ मुस्लिम भी भारत आ रहे है। क्या उन मुस्लिमों की आस्था वहाँ के शरीयत कानून में नहीं है ? इसके दो पहलू हो सकते है पहला तो यही कि सच में उनकी श्रद्धा वहाँ के अभी के शरीयत कानून में नहीं है दूसरा पहलू यह कि वे शरीयत को वर्तमान में प्रासंगिक नहीं पाते हैं तभी हवाई जहाज में जगह न मिलने पर उसके टायर में लटककर किसी भी तरह भी किसी अन्य देश में पहुँचना चाहते हैं और इसके लिए जान की बाजी लगाने से भी पीछे नहीं हट रहे हैं। इस दृष्टि से देखा जाये तो भारत मुस्लिमों के लिए जन्नत है। उन्हें यहाँ हिन्दुओं के समकक्ष सभी अधिकार प्राप्त है या यू कहें कि सत्ता द्वारा इनके तुष्टिकरण के कारण इनके अधिकार हिन्दुओं से अधिक है। देश में संविधान के भाग 3 के अनुच्छेद 14 में 'समानता का अधिकार' सभी नागरिकों को दिया गया है तब 'राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग', 'मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड' जैसी संस्थाओं का अस्तित्व क्यों है ? यह विचारणीय प्रश्न है। 'समान नागरिक संहिता' आज समय की मांग है जिससे समानता की अवधारणा अपने समुचित्त रूप में स्थापित हो सके और मनुष्य मात्र की समानता की जो बात मध्यकालीन संतों ने कहीं वह प्रासंगिक हो सके–

आतम भाई जीव सब, येक पेट परिवार।
दादू मूल विचारिए, तो दूजा कौंण गंवार।।[16]

संत साहित्य मात्र साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए ही प्रयासरत नहीं है बल्कि वह जाति और वर्ण से उत्पन्न भेदभाव को भी समाप्त करना चाहता है। यह साहित्य समानता और समरसता का पक्षधर है। दादू का भी कहना है कि–

नीच ऊँच मधिम को नांही, देषौं राम सबनि कै मांही।
दादू साच सबनि मैं सोई, पेड़ पकड़ि जन नृभै होई।।[17]

इस प्रकार दादू का राजनीतिक दर्शन भले ही संक्षिप्त हो लेकिन उसका स्वरूप व्यवहारिक और बहुआयामी है। वह अत्यन्त ठोस विचारों की परिणति है और इसी कारण वह आज के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में भी उपयोगी है।

संदर्भ–

1. रवीन्द्र कुमार सिंहः दादू काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करणः 2005 ई., पृ. 18
2. रामबक्षः भारतीय साहित्य के निर्माता दादूदयाल, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, संस्करणः 2017 ई., पृ. 36
3. रवीन्द्र कुमार सिंहः दादू काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, पृ. 19
4. दिव्य कुमार सोतीः ईसाई मिशनरियों का खतरनाक खेल, दैनिक जागरण पत्र में प्रकाशित लेख
5. डॉ. नवीन नन्दवानाः संत दादूदयाल जीवन और साहित्य, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, प्रथम संस्करणः 2018 ई., पृ. 8
6. संत चेतनदास स्वामीः श्री दादूवाणी–श्री दादू तत्वार्थ प्रकाशिका, सन्त बाबा रामपाल दास सेवा संस्थान (ट्रस्ट), जयपुर, प्रथम संस्करणः 2014 ई., पृ. 278
7. रामबक्षः भारतीय साहित्य के निर्माता दादूदयाल, पृ. 36
8. संत चेतनदास स्वामीः श्री दादूवाणी, पृ. 473
9. रामबक्षः भारतीय साहित्य के निर्माता दादूदयाल, पृ. 28
10. वही, पृ. 28
11. वही, पृ. 27
12. वही, पृ. 41

13. वही, पृ. 39
14. रवीन्द्र कुमार सिंहः दादू काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, पृ. 58
15. रामबक्षः भारतीय साहित्य के निर्माता दादूदयाल, पृ. 32
16. डॉ. नवीन नन्दवानाः संत दादूदयाल जीवन और साहित्य, पृ. 107
17. रामबक्षः भारतीय साहित्य के निर्माता दादूदयाल, पृ. 34